विज्ञानांजलि

सम्पादक

प्रो० शिव गोपाल मिश्र
डॉ० दिनेश मणि
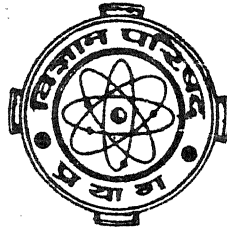
विज्ञान परिषद् प्रयाग
महर्षि दयानन्द मार्ग
इलाहाबाद-211002

स्वामी सत्य प्रकाश सरस्वती के 91वें जन्मदिन (24.8.96) पर

विज्ञानांजलि

जग की मिटे अशान्ति शान्ति सबको सुखकर हो
चिर निर्धनता मिटे सम्पदा प्रिय घर घर हो ।
होकर प्रबल समर्थ न होवें अत्याचारी
छद्मित तज व्यवहार बनें हम स्नेह पुजारी ।
मेरे प्रभु विज्ञानमय हमको यह वरदान दो
सबके ही कल्याण हित अति उन्नत विज्ञान हो।

'विज्ञान' दिसम्बर 1936 **डॉ० सत्यप्रकाश**

भूमिका

"वियोगी होगा पहला कवि"- से स्पष्ट है कि जब मन भावविह्वल होता है तो कविता का जन्म होता है। कविवर सुमित्रानन्दन पन्त के ही अनुसार-"विज्ञान और साहित्य- विशेषतः काव्य साहित्य ही लोकमंगल का पथ ग्रहण कर, अपनी असीम स्थूल सूक्ष्म शक्तियों की सम्भावनाओं से, आज मानव जगत तथा मन का बहिरंतर रूपान्तर एवं पुनर्निर्माण कर इस युग के नरक को नये स्वर्ग का रूप दे सकते हैं, इसमें मुझे रत्ती भर सन्देह नहीं। हमारे युवकों तथा छात्रों के मानव चेतना के नवीन प्रकाश का सन्देशवाहक बनकर आज धरती के पथराये मन में अपने नवीन रंग का संगीत, स्पन्दन, तरुण हृदयों के स्वप्नों का जागरण तथा अदम्य प्राणों का सौन्दर्य एवं ऐश्वर्य भरना है-मानवता के प्रति वे अपने इस अमूल्य दायित्व को न भूलें।"विज्ञान प्रगति की धड़कनों से स्पन्दित जीवन में आज के मनुष्य की काव्यात्मक अभिव्यक्ति भी विज्ञान के प्रभाव से भला कैसे मुक्त रह सकती है? हिन्दी काव्य के इतिहास में क्रमशः छायावाद, रहस्यवाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नई कविता, अकविता कैसे अनेक वाद आये। ये प्रवृत्तियाँ अपने-अपने काल की परिवर्तित स्थितियों- परिवेश या पर्यावरण में बदलाव की द्योतक हैं।

यह सच है कि कामायिनी जैसे काव्य में आधुनिक विज्ञान के कुछ सूक्ष्म विचारों को स्थान प्राप्त है किन्तु विज्ञान के वर्तमान युग में कवियों का एक वर्ग अपने मनोभावों को कविता में व्यक्त करता आ रहा है। हो सकता है कि ये कवितायें विज्ञान के महत्व को उजागर करने वाली हों या फिर वैज्ञानिक सिद्धान्तों या उपकरणों की व्याख्या करने वाली किन्तु इतना तो स्पष्ट ही है कि उनकी शब्दावली उनकी अपनी गढ़ी हुयी है तथा प्रयुक्त उपमान की अपने हैं।

शुद्ध काव्य साहित्य के रचनाकारों तथा विज्ञानधर्मी कवियों में मुख्य अन्तर यही है कि शुद्ध काव्य साहित्य में विज्ञान के शब्द या कभी-कभी किसी तथ्य/विचार की एक

झलक पायी जाती है जबकि विज्ञानधर्मी कवि वैज्ञानिक विषयों पर जैसा सोचता है वैसा ही अभिव्यक्त करता है। उसके प्रकृति के चित्रण में पर्यावरण के प्रति सचेष्टता होती है। वह गांधी, नेहरू, राम, कृष्ण के गुणगान न करके आइंस्टीन, जगदीश चन्द्र बसु, रमन आदि के गुण गा सकता है। वह कल्पवृक्ष के नहीं नीम के गुणों का गान करेगा। वह गंगावतरण का नहीं गंगा प्रदूषण का जिक्र करेगा। यही नहीं, उसकी भाषा पारिभाषिक शब्दावली से युक्त होगी, उसके उपमान अपने होंगे। वह साहित्य के उपमानों को अपने ढंग से वैज्ञानिक तथ्यों को उजागर करने में लायेगा। उसके काव्य की गहन अनुभूति वैज्ञानिक युग में शान्ति, कल्याण, दीर्घ जीवन की कामना से युक्त होगी। वह साहित्य से प्रेरणा लेकर विषय के अनुरूप शैली, विधा का प्रयोग करेगा। वह दोहा, कविता या मुक्त छन्द का प्रयोग करेगा। वह परमाणु ऊर्जा की परिभाषा का काव्य लिखेगा, वह संहार की परिभाषा का काव्य लिखेगा, वह वृक्ष की अन्तरात्मा का, चन्द्र लोक का, मंगल या सूर्यग्रह का तथ्यपरक वर्णन करेगा। वह व्यंग्य का सहारा भी ले सकता है। पहेलियों, चुटकुलों (तुकबन्दी युक्त)को भी लिख सकता है।

जहाँ तक रस प्रयोग का प्रश्न है वह करुण, शान्त, अद्‌भुत, भयानक किसी भी रस का प्रयोग कर सकता है किन्तु किसी भी रस विशेष की प्रधानता इसलिये नहीं हो पायेगी क्योंकि ये कवितायें किसी संदेश की वाहक होती हैं। वह प्रकृति के विवरण ग्रह/नक्षत्रों के वर्णन करने में 'श्रृंगार रस'का प्रयोग कर सकता है तो प्रकृति में हो रहे अत्याचार की व्याख्या करने में वीर रस का।

वैसे विज्ञान परिषद् प्रयाग की स्थापना सन् 1913में ही हो गयी थी किन्तु 'विज्ञान' मासिक पत्रिका का प्रकाशन सन् 1915से प्रारम्भ हुआ और तभी से श्री धर पाठक, बाबू राम दास गौड़, स्व० रायदेवी प्रसाद, सत्य नारायण, पारस नाथ सिंह ने विज्ञान तथा वैज्ञानिक के महत्व को बताते हुये मंगलाचरण लिखे जिनमें ईश्वरीय सत्ता की अद्‌भुत/विलक्षण देन के रूप में विज्ञान को व्याख्यायित किया गया। तत्पश्चात् स्वामी हरिशरणानन्द, डा० सत्य प्रकाश (बाद में स्वामी सत्य प्रकाश सरस्वती) ने विज्ञान की महिमा का गुणगान करने वाली कवितायें लिखीं। डा० सत्य प्रकाश जी की कविताओं का संग्रह (1927) 'प्रतिबिम्ब'नाम से प्रकाशित हुआ। इसके पश्चात् कुछ वर्षों तक 'विज्ञान' में कवितायें प्रकाशित नहीं हुयीं। सन् 1970के दशक से कुछ स्फुट कवितायें पुनः प्रकाशित होने लगीं। इधर के कवियों में श्याम सरण अग्रवाल 'विक्रम', रमेश दत्त

शर्मा, प्रेमानन्द चन्दोला, डा० चन्द्र विजय चतुर्वेदी, राम चन्द्र मिश्र, डा० भारतेन्दु, रमेश कुमार शर्मा, अनिल प्रकाश त्रिपाठी, चन्द्रा जी राव इंगले, राधेश्याम विजधावने अतृप्त, अनिल श्रीवास्तव, मंजु गुप्ता, प्रकाश तातेड़, ओम ऋषि भारद्वाज, इरा अग्रवाल, उदय ठाकुर, डा० रणजीत, ओम प्रकाश गुप्ता, राम गोपाल परिहार इत्यादि के नाम सम्मिलित हैं।

आज लगभग सभी विज्ञान पत्रिकाओं में विज्ञान कवितायें छप रही हैं यथा विज्ञान, आविष्कार, विज्ञान प्रगति, विज्ञान गंगा, वैज्ञानिक, विज्ञान गरिमा सिंधु, क्षितिज, जिज्ञासा, इस्पात भाषा भारती, पर्यावरण, पर्यावरण पत्रिका, आपका स्वास्थ्य, हरियाणा साइंस बुलेटिन इत्यादि। वर्तमान समय में विज्ञान कविता लिखने वाले कवियों में प्रमुख हैं—डा० हेम चन्द्र-जोशी, डॉ चन्द्र मोहन नौटियाल, डा० दिनेश मणि, एस० एस० जेमिनी, डा० राम लषण मिश्र, दिलीप भाटिया, प्रो० सीता राम सिंह 'पंकज', डा० अश्विनी कुमार सिन्हा, इरफान ह्यूमन, लोकेश विश्व भारती, मेध सचदेव, शाह आलम सिद्दीकी, विजय कुमार उमराव, जय प्रकाश चतुर्वेदी, शिवाकान्त बाजपेई, आनन्द बिल्थरे, योगेश्वरी शास्त्री, अंजलि श्रीवास्तव, इन्द्र प्रसाद त्रिपाठी, नरेश कुमार 'उदास', राम किशोर शर्मा, प्रवेश सक्सेना, भानुदत्त त्रिपाठी 'मधुरेश', रमेश चांगेसिया 'मुसाफिर', सूर्य कुमार पाण्डेय, दक्षा गुप्ता, विवेक रंजन श्रीवास्तव 'विनम्र', विश्व मोहन तिवारी, उदय वीर सिंह, मयंक कुमार गुप्ता, डा० कल्याण शंकर भट्टाचार्य 'निर्झर' , दीपक कोहली, प्रो० रमेश चन्द्र सुकुल 'चन्द्र', गणेश सिंह तलवार, डॉ प्रभाकर शुक्ल , डा० सुरेन्द्र कुमार शर्मा, भगवती प्रसाद उनियाल, कृष्ण कुमार 'सुमन', व्यास मिश्र, श्रीमती सलमा 'जमाल', नवीन चौधरी, कु० संतोष लता, विशन दत्त जोशी 'शैलेज',संजय जैन, अनिल वशिष्ठ, कु० प्रीति रावत, रमेश चन्द्र बमराड़ा, राज कटारिया 'अजीज', डा० राणा प्रताप सिंह, सव्य साची पाल, हरीश नारंग, विक्रमा दयाल, रिमी मेहरोत्रा, डा० किरन शुक्ल, दिनमणि मिश्र, रमेश चन्द्र विद्यार्थी, कु० अंशु शुक्ला, लाखन सिंह 'सुमन',डॉ० योगेश्वर प्रसाद सिंह 'योगेश', घमण्डी लाल अग्रवाल, निहाल सिंह, त्रिवेन्द्र पाराशर 'त्रि', डा० कमल के० प्यासा, डा० दिनेश दधीचि, कुमार कृष्णा, डा० रश्मि तिवारी, श्रीमती विद्या अवस्थी इत्यादि।

विज्ञान लेखकों के कुछ कविता संग्रह भी प्रकाशित मिलते हैं। इनमें डा० विद्याभूषण 'विभु' द्वारा रचित 'गगन गंगा' 1964 बालोपयोगी वैज्ञानिक कविताओं की

एक अच्छी कृति है। इसमें सम्पूर्ण सौरमण्डल के विषय में सरल, सुबोध तथा रोचक शैली में अच्छी जानकारी प्रस्तुत की गयी है। श्री प्रेमानन्द चन्दोला की 1991 प्रकाशित 'केशिका' भी इसी श्रृंखला में परिगणित की जा सकती है।

नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली (1963)की बाल-मित्र ज्ञान- विज्ञान माला के अन्तर्गत प्रकाशित श्री सन्तराम वत्स्य की पद्यबद्ध पुस्तकें हमारा शरीर, हमारा स्वास्थ्य, सूरज चाँद सितारे कविता के माध्यम से बच्चों को अच्छी जानकारी उपलब्ध कराती हैं।

कौंसिल ऑफ साइंटिफिक एण्ड इण्डस्ट्रियल रिसर्च, नई दिल्ली (1966)की भारतीय भाषा यूनिट द्वारा विज्ञान विनोद पुस्तकमाला के अन्तर्गत प्रकाशित टेलीफोन की कथा, बिजली का चमत्कार, हवा का चमत्कार, चुम्बक का चमत्कार (हिन्दी), विजेचा चमत्कार(मराठी)पुस्तकें कविता के माध्यम से बच्चों को अच्छी जानकारी देने में सक्षम रही हैं।

कुछ भी हो, विज्ञान लेखकों का एक वर्ग उत्सुकहै अपना संसार- अपना कार्य क्षेत्र- कविता को बनाने का। हिन्दी काव्य जगत उन्हें अपनायेगा हम इस बारे में आशावादी हैं। निः सन्देह विज्ञान-कविता का क्षेत्र उर्वर है। इसका भविष्य अतीव आशाजनक एवं मंगलमय प्रतीत हो रहा है। यह संग्रह स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती की स्मृति में उनके जन्म दिवस के अवसर पर "विज्ञानांजलि" **नाम से उन अनेक विज्ञान कवियों की रचनाओं के मूल्यांकन, एवं भावी दिशा की खोज का लघु प्रयास है। ऐसे अनेक संग्रहों के प्रकाशित होने की अविलम्ब आवश्यकता है ताकि अधिक से अधिक विज्ञान-कवियों की प्रतिनिधि विज्ञान-रचनायें स्थान पा सकें।**

24 अगस्त 1996
विज्ञान परिषद् प्रयाग

शिव गोपाल मिश्र
दिनेश मणि

मंगलाचरण

जय जय वैज्ञानिक-भविष्य-भूषित भुवि भारत
सब विधि सुविधा-भरित, विविध विध भुवि सेवा-रत
त्यों जग के सब सुजन सुखद-जीवन पथ-नेता
वैज्ञानिक-साधन-सुयोग-प्रद उन्नत-चेता

त्यों अन्य अन्य भू-मातके
धीर वीर गम्भीर सुत
सब जीओ जयी जुगान जुग
जगत-अन्त लों, जगत-नुत।।

* स्व० श्रीधर पाठक, 'विज्ञान' अप्रैल 1935

मंगलाचरण

अजब तेरी माया जानी न जाय

बीज में वृक्ष, वृक्ष में फल पुनि फल में बीज छिपाया।
मुझमें जग-जग में हिय मेरा, मेरे हिय कैसे समाया
कारण कौन-कौन सा कारज, दोनों ने मन उलझाया,
किसने रची वुद्धि कुंठित, पुनि व्यर्थ का नाच नचाया,
क्यों अनन्त ब्रह्माण्ड निरन्तर व्योम बीच भरमाया
सत्यासत्य मिलाया किसने जैसे धूप औ छाया,
तुझे देख जिस दिशि में देखा तुझको ही लख पाया,
तुझे देख जब निज दिशि देखा अपना आप गँवाया।

---

* राम दास गौड़, 'विज्ञान'जुलाई 1916

विज्ञान महिमा

तुम्हारी शक्ति है विज्ञान !
विधिना की विधि मनुज सुगम कर जड़-चेतन सम-भान।
बिन चेतन के चंचल कल कल-रव कल करें महान।।
मोटर रेलें पोत डुबकनी बिन वाहन के यान।
थल में जल में गगन गमन में गति दी एक समान।।
गुप्त प्रगट का भेद मिटाया दृश्य अदृश्य जहान।
सरल रूप में सन्मुख लाकर रख दीन्हा भगवान।।
वस्तु अग्राह्य रही नहिं कोई अणु परमाणूवान।
लोक अलोकित सब कर दीन्हें मन नहिं रहा गुमान।।

---

* **स्वामी हरिशरणानन्द,** 'विज्ञान' नवम्बर, 1941

माणिक्य की आत्म-कथा

जग कहता है माणिक्य मुझे,
पारखियों ने परखा मुझको।
सम्राटों के सरताजों में
जौहरियों ने रक्खा मुझको।
भूपों के कोषों तक पहुँचा,
पीकर खनिकों का सारा श्रम।
मेरा मायावी वर्ण निरख
हो गई रानियाँ भी विभ्रम।
पर, खोल ढोल की पोल सभी
कह दिया एक वैज्ञानिक ने।
है जटिल नहीं संरचना
यह है ऑक्साइड एल्यूमिनियम़ का।
यह दर्शन कौन विहंगम का?

* रमेश कुमार शर्मा, ' विज्ञान 'जनवरी-फरवरी 1976

वैज्ञानिक के श्रम का मूल्याकंन

मेरे अंतस का वैज्ञानिक
नित्य नई सृष्टि का सृजन करता है
और नित्य विनाश।
फिर अपनी कल्पना के अंतरिक्षयान में
सवार हो प्रस्थित हो जाता है
किसी अन्य सृष्टि की खोज में
वहाँ भी वह चुप नहीं बैठता
और शून्य में भी प्रयोग करके
वह अपने श्रम का मूल्यांकन
क.।। चाहता है
ईमान के चूर्ण में सत्याम्ल डालकर
श्रम की गैस से वातावरण को।।
सुगन्धित करना चाहता है
किन्तु अम्ल गिरते ही
विस्फोट हो जाता है
और मेरा वैज्ञानिक
हमेशा के लिये खो जाता है।

---

* **चन्द्राजीराव** 'विज्ञान' **अक्टूबर 1976**

वैज्ञानिक

मैं अपने अंतस की प्रयोगशाला में
नित नये प्रयोग करता रहता हूँ
भूख प्यास से अपने जिस्म को
परखनलियों में दिन रात तपाता रहता हूँ
और अस्थिपंजर देह को
प्रयोगों की लम्बी लाइन में
बेतरतीब खड़ा कर देता हूँ
जहाँ मेरी जीभ पोटेशियम साइनाइड के स्वाद की
पहचान कर एक और मौत
अपनी स्नेहिल बाँहों में समा लेती है
अथवा अंगुलियों अपने जिस्म पर
तेजाब उड़ाती रहती हैं
जीन्स, पारे और आइसोटोपों की रासायनिक प्रक्रिया का
सूक्ष्मावलोकन करती रहती हैं
और कई बंडल फार्मूले बनाकर मिटाती रहती हैं।
मैं आविष्कारों में अपनी सम्पूर्ण जिन्दगी खपा देता हूँ
अनुभवों को अंगुलियों से पकड़
कागज पर फार्मूले सा उतार देता हूँ
और एक नये प्रयोग पर
एक नयी जिन्दगी को मसीहा बना देता हूँ
अथवा गोडार्ड की ही तरह
उपेक्षा का बहुत बड़ा आकाश अपने भीतर समा

---

* राधे लाल विजधावने 'अतृप्त', 'विज्ञान', नवम्बर 1976

वैज्ञानिक चंद्रयात्रा करता रहता हूँ।
मेरे भीतर और बाहर की अणु और परमाणु ऊर्जा ऐसी भी है-
जो लोहे में प्राण डाल देती है
सड़कों पर अथवा समुद्र सतहों पर
निर्जीव मशीनों को आदमी की ही तरह दौड़ा देती है
विश्व की अर्थ व्यवस्था का सारा भूगोल बदल देती है।
इसलिये मेरे भीतर का वैज्ञानिक
परखनलियों में जीता है, पलता है

अथवा-

मशीन के हर पुर्जों पर एक नया युग उतारता रहता है
और विश्व के भूगोल को नये सिरे से बनाकर
हमें अन्दर तक जोड़कर
नयी शक्ति, नयी दिशा प्रदान करता रहता है
अथवा चांद के धरातल से खनिज निकालता रहता है।।

जीवन -वृत्त

जीवन एक वृत्त है।
समस्याओं (विविध)का सान्द्रण अपने केन्द्र पर
लिये हुए संघर्ष की चरम स्थिति में भी
परिधि के बाहर न जाने की बाध्यता,
विशेष स्थितियों में संघर्ष को नया आयाम तो देती है
पर इन स्थितियों में
परिधि से बाहर न निकल पाने की छटपटाहट को-एक संस्कार का रूप देता,
केवल त्रिज्या का मान ही बदलता है
मानो परिधि पर भटकना ही इसकी नियति हो।
केन्द्र से उन्मुक्त होने की प्रक्रिया में
समस्याओं से स्वतंत्र होने की उत्कट अभिलाषा संजोये,
'उसका'मनोबल, धैर्य, साहस, प्रत्युत्पन्नमतित्व आदि सारे घटक हैं
उसे केन्द्र से परिधि की ओर गतिमान करते अपकेन्द्री बल के।
जीवन को गति देने के लिए दिशा बोध आवश्यक है।
हर श्रेणी की मानसिकता के संघर्ष की शुरुआत केन्द्र से होती है।
पर परिधि की ओर समस्याओं का सान्द्रण क्रमशः विरल होता जाता है-
विभिन्न कोणों पर--विभिन्न दिशाओं में त्रिज्याओं के भिन्न-भिन्न मान के लिए।
मानसिक परिवर्तन के हर सम्भव दौर से गुजरते हुए।

---

* अनिल प्रकाश त्रिपाठी, 'विज्ञान', मार्च 1977

योगदान

भौतिकविज्ञानियों का कथन है-
"देखते नहीं होते हैं जब हम
नारंगी, नारंगी नहीं होती"
इसीलिये कहता हूँ-
रूपसी ! इतराओ नहीं
तुम्हारी तथाकथित सुन्दरता और रूपराशि
कुछ नहीं-
हमारी तंत्रिकाओं व ज्ञानेन्द्रियों की
प्रतिवर्ती क्रिया के माध्यम से
केवल हमारा ही योगदान है।

---

* प्रेमानन्द चन्दोला, 'केशिका' 1991 से उद्धृत

विज्ञान कविता

आधा ग्राम मटर का दाना फूँके मार हटा दूँ
ग्राम एक अंगूर दबाकर अंगुली से पिचका दूँ
पाँच ग्राम कैरम की गोटी ठोकर मार भगा दूँ,
सौ ग्राम की गेंद तुम्हारी बल्ले से पिटवा दूँ
एक किलो ठंडे पानी को लीटर में पलटा दूँ
चार किलो का बास्ता लेकर सारा शहर घुमा दूँ
क्विंटल चावल की बोरी को पांडी से उठवा दूँ
एक टन बोझ उठाना हो तो टैम्पू एक बुला दूँ
सात आठ टन ढोने हों तो ट्रक पूरा मँगवा दूँ
अगर पहाड़ उठा लाना हो हनूमान भिजवा दूँ
आधा ग्राम मटर का दाना फूँके मार हटा दूँ।।

---

* बलदेव राज दावर, **'आविष्कार'**, मार्च 1993

विज्ञान

विज्ञान था एक
संतुलित क्रमबद्ध ज्ञान,
पर क्या वो जान पाया, अपना स्थान?
नहीं।
प्रदूषित कर वातावरण को,
असंतुलित कर मानव मस्तिष्क को,
फैलाया दुनिया में, **घोर संग्राम**।
कहीं एटम बम, कहीं मिसाइल,
कहीं रॉकेट, कहीं रडार,
बने शोधशाला में,
बनाये वैज्ञानिकों ने,
पर वो दे गये धोखा,
टूट गये सारे अरमान ।
न अब ज्ञान, न विज्ञान
न वैज्ञानिक, न संस्थान।
बस अब तो है, अवाक् मानव,
भयाक्रान्त, असुरक्षित जीवन,
और जहां।
यही परिभाषा है अब विज्ञान की
जो था कभी सर्वोपरि ज्ञान।

* डॉ० रश्मि तिवारी, पंखडियाँ (स्वर्ण जयन्ती वर्ष बीरबल साहनी इंस्टीट्यूट) से साभार

विज्ञान क्षणिकाएँ

रसायन विज्ञान

क्या कोई परमाणु की संरचना बतायेगा?
सर ! परमाणु की संरचना छोड़िये
परमाणु की रचना पूछिये।
परमाणु की रचना बड़ी शानदार है
और उसकी बेटी प्रोटान बहुत जानदार है।
इसलिए उसने उसको
कमरे (नाभिक) में बन्द कर रखा है
और हम आशिक इलेक्ट्रानों ने
चक्कर काट काट कर परमाणु की
नाक में दम कर रखा है
तभी तो इसकी सुरक्षा में
उसने न्यूट्रान बिठा रखा है
बस इतना ही तो परमाणु में
बाकी उसकी संरचना में
क्या रखा है?

---

* मनीषा पत्रिका (1990-1996) संयुक्तांक से साभार

जीव विज्ञान

प्रिय !
इस जन्म में तुमको नहीं अपना सका
पर तुम अगले जनम में आक्सीजन होना
और मैं हीमोग्लोबिन होऊँगा
और साँस साँस में
तुम को अपना लूँगा।

भौतिक विज्ञान

क्या बात है?
तुम्हारे प्रेम की बल रेखाएँ हमेशा दक्षिण में जाती हैं?
वहाँ कौन कलमुँही रहती है?
यह तुम्हारी गलतफहमी है
दक्षिण मेरा वाम अंग होता है
और तुम वामांगी हो।
मेरे प्रेम की बल रेखाएँ तुम्हारे पास जाती हैं
तुम्हीं कलमुँही रहती हो।

उसे 'डोडो' होने से बचाओ!

घर की छत से देखता हूँ
कवचधारी के कवच धारदार छूरी से
खुरच-खुरच कर अलग किए जा रहे हैं।
खून से नहाया जिन्दा मौत की ओर बढ़ता
उस असहाय प्राणी की अन्तिम यात्रा भी है कितनी कष्टप्रद?
सुअर होता तो चीत्कार करता
मुर्गा फड़फड़ाकर पंख माँगता अपनी आजादी,
और छटपटाती मछली भी,
बकरा मिमियाता कातर हो प्राण रक्षा को।
लेकिन वह तो आहट मात्र से छुपा लेता है सिर अपना!
आखिर समझेगा कैसे उसकी तड़प आदमी?
मैं शाकाहारियों से नहीं
मांसाहारियों से कहता हूँ,
मैं पण्डितों, सूफियों को नहीं
बलि देने वालों को बुलाता हूँ,
कि आओ देखो मेरे घर की छत से
हत्या का यह वीभत्स नाटक
और बताओ--
तुम्हारा हृदय अब भी सामान्य गति से गतिमान है क्या?
बोरी में भर-भर आए
तराजू पर तुलकर बिके वे,
पाँच सितारा डिश बने हैं उनकी दस्तरखानों पर
जिनके लिए गंदगी सोना-चाँदी है।
वन्य अधिनियम को ठेंगा बताते हुए
इन लोगों को प्रौढ़ शिक्षा देना

---

* उदय ठाकुर, 'विज्ञान' अप्रैल 1992

अमूल्य तेल का अपमान है।
पुलिस का भय पोस्टरों से दिखाना
दीवारों को व्यर्थ काला करना है।
उन्हें भाईचारे से समझाना
अपने कानों पर हाथों को रखना है।
जंगली हो गया है यहाँ जंगल का कानून
और स्वाद के लिए उसकी विचित्र नस्ल
बाजार में बिकाऊ है।
काश ! वह
शेर की तरह दहाड़ सकता
हिरण की तरह चौकड़ी मार सकता
कबूतर की तरह फुर्र हो सकता
खरगोश की तरह छू-मन्तर हो सकता !
कुछ भी तो नहीं कर सकता वह-
लगता है मन, कर्म, वचन से अहिंसा समर्थक है।
साथियों हमें बनाना है इसके लिए
'जिम कार्बेट पार्क' 'भरतपुर पक्षी विहार'
'भौर सैदा मगरमच्छ विहार'
और 'राजाजी पार्क'जैसा
नूतन अभयांचल।
अन्यथा यह प्रकृति का विचित्र जलचर
सदा-सदा के लिए 'डोडो'बन जायेगा
फिर चीखो-चिल्लाओ, लिखो या विहार बनाओ
वह एक बार रूठ के चला गया तो
व्यर्थ जायेंगे सारे आमन्त्रण।
वह कभी वापस नहीं आयेगा
कभी नहीं।
वह अद्भुत जलचर,
कछुआ ! कछुआ ! कछुआ !

पहाड़, गाँव और भगीरथ

पहाड़ ! ओ पहाड़ !!
कहाँ गये तुम्हारे पेड़,
तुम्हारे बच्चे,
कैसे लुट गया तुम्हारा जंगल,
तुम्हारा परिवार,
कौन कर गया तुम्हें नंगा
एकदम नंगा,
कुछ तो बतलाओ, मेरे पहाड़ !
गाँव !और गाँव !!
कहाँ गया तुम्हारा मासूम मौसम
देकर मानसूनी मातम
कैसे पड़ गया तुम्हारे यहाँ
स्नेह और विश्वास का अकाल
कौन कर गया तुम्हें भूखा
प्यासा, अधनंगा,
यह तो बताओ, मेरे गाँव !
भगीरथ ! ओ भगीरथ !
कहाँ गई तुम्हारी लगन और कर्मनिष्ठा
कैसे छूटी तुम्हारी
लोक कल्याण की भावना
कौन कर गया मैली, तुम्हारी गंगा
पतित पावनी गंगा
अब तो बोलो ! मेरे भगीरथ !
पहाड़, गाँव और भगीरथ
आज मरणासन्न हैं
इन्हें चाहिए
हमारा कोमल संवेदन।

---

* प्रकाश तातेड़, 'विज्ञान', अगस्त 1991

हमारा क्या?हम तो 'बायोमास'हैं

हमारा क्या?हम तो 'बायोमास'हैं
फिर क्यों होते उदास हैं?
हम उगाये ही इसीलिये गये कि
हम उगें, बढ़ें और फिर काटकर
मिट्टी में दफ़ना दिये जायें
ताकि मिट्टी में मिलकर
केंचुओं, जीवाणुओं, कवकों आदि का
आहार बनकर
रासायनिक क्रियाओं की क्रियाशीलता बढ़ायें।
हर तरह से मिट्टी की उर्वरता बढ़ायें।
यही हमारा पुनीत कर्म है,
विच्छेदित होना ही हमारा धर्म है।
वास्तव में हम सब कार्बनिक पदार्थ ही हैं,
आप मानें या न मानें, यही यथार्थ भी है।
तुमने नहीं सुना?
इस समय कार्बनिक पदार्थों का अभाव है,
साथ ही रासायनिक उर्वरकों का
प्रतिदिन बढ़ता भाव है,
और प्रदूषण इसका दुष्प्रभाव है।
संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि
मिट्टी की उर्वरता खतरे में है,
यानी हमारी सभ्यता खतरे में है,
तो क्यों न हम अपना राष्ट्रधर्म निभायें।
हम यानी 'बायोमास'मिट्टी की उर्वरता
को नष्ट होने से बचायें।
बढ़ते मुँह घटते भोजन के अन्तर को घटायें।
हमारा क्या हम तो 'बायोमास'हैं।
हमारे हिस्से में है दुख मीट्रिक टनों में
और सुख का अंश शून्य प्रति दस लक्षांश है।

---

* डॉ० दिनेश मणि, 'विज्ञान' दिसम्बर 1994–जनवरी 1995

वृक्ष की चेतावनी

ओ मानव! तू सोच जरा,
क्यों मुझे काटने आया है?
मैंने तेरे लिए सदा
धरती को स्वर्ग बनाया है।।
तेरी औ तेरे लोगों की,
किस पापी ने मति मारी है?
निर्मम होकर वृक्ष काटने,
का क्रम अब तक जारी है।
वृक्ष अगर यूँ कटते जायें,
धरती बन्जर हो जायेगी।
कैसे भूख मिटाएगा तू
दुनिया फिर क्या खायेगी?
तेरा जीवन इस धरती पर,
एक बोझ बन जायेगा।
अभी समय है, अभी सम्भल जा,
वरना फिर पछतायेगा।।

---

* कु० अंशु शुक्ला, पर्यावरण, दिसम्बर 1994

अपशिष्ट पदार्थ

फूफी ने पूछा फूफा से "क्यों श्रीमान वशिष्ठ !
शिष्ट, अशिष्ट सुना था, पर क्या होते 'अपशिष्ट ?"
कुप्पा हुए फूलकर फूफा सुन फूफी की बात,
पहली बार उन्होंने डाली थी फूफा को घास।
आग्रह अपनी श्रीमती का कैसे देते टाल?
लगे बताने-"बची कुची रोटी, सब्जी, दाल।
लकड़ी, काँच प्लास्टिक का टूटा-फूटा सामान,
फटे पुराने कपड़े लत्ते, टूटी लुटिया थाल।
कूड़ा करकट घर का जो भी हो जाता बेकार,
पत्र-पत्रिकाएँ या कॉमिक्स कॉपी और अखबार।
धुँआ चिमनियों से निकला, या निकला हो कारों से
मलबा गिरे मकानों का हो या निकला हो खानों से।
गली-गली में शहरों की, सड़ते कचरे के ढेर
अब मैं चलता देवी!दफ्तर को होती देर
ऐसे कितने ही पदार्थ हैं, जिनकी लंबी लिस्ट
वेस्ट कहे जाते इंगलिश में हिन्दी में अपशिष्ट।
पर्यावरण-प्रदूषण से इसका गहरा संबंध
इसीलिए अनिवार्य हो गया इनका उचित प्रबंध।
उपयोग कुछों का सरल, कुछ का सम्भव उपचार
कुछ को दफना देते कुछ का करें दाह -संस्कार।
कुछ अपशिष्ट प्राण घातक हैं कुछ पर है प्रतिबन्ध,
कुछ का पृथ्वी के विनाश से है सीधा सम्बन्ध।
जनसंख्या विस्फोट और कहते हैं जिसे विकास
मानव को दोनों ने दिया अपशिष्टों का श्राप।

---

* रमेश चन्द्र विद्यार्थी, पर्यावरण, दिसम्बर 1994

कालिय बोला

कालनाग कालिय बोला--
गोपाल!कभी मेरे फन पर,
पाँव तुम्हारे थिरके थे।
अपमान पराजय और ग्लानि से,
मैं आकुल था, तुम पुलकित थे।।
दलित पराजय था मैं, पर
भूल नहीं पाया हूँ वह पल।
प्रतिशोध आज मैं लूँगा मोहन!
व्यथित तुम्हें कर प्रतिदिन प्रतिपल।।
वन तड़ाग के तुम हो रसिया,
वनमाली कहलाते हो।
चढ़ कदम्ब पर टेर बाँसुरी
बछड़ों को हुलसाते हो।
इन्हें निगल जाऊँगा गिरिधर!
वृक्षविहीन करूँगा धरती।
नहीं रहेगी यह हरीतिमा,
उर्वर खेत बनेंगे परती।।
मेरे विष का प्रसाद पाकर,
मानव विवेक अब कुंठित है।
वन उपवन का कालचक्र,

* दिन मणि मिश्र, 'पर्यावरण,' 1994

ज्यादा नहीं प्रतीक्षित है।।

'ओजोन'चदरिया जीर्ण हो गई,
अनल गिरेगा अम्बर से।
धधक उठेगी रत्नावलियाँ,
भूतल पँट जाये पंजर से।।

इस भुजंग की माया से
मानव अरण्य का त्रास बनेगा।
तब देखोगे भोले पीतांबर!
प्राणी मेरा ग्रास बनेगा।।

रतनारे ये नयन तुम्हारे,
आँसू से जब छलक पड़ेंगे।
हरित बाँसुरी खण्डित होगी,
रासरंग सब धूलि मिलेंगे।।

हृदयशूल से तुम तड़पोगे,
विजय गान मेरा होगा।
उसी दिवस हे कुंजबिहारी!
प्रण पूरा मेरा होगा।।

आह्वान

गंगा, जब तुम पर्वत से उतरी थीं,
अमृत कलश लेकर, बाँटा पंक्ति में बैठे एक-एक देव को
अजरता-अमरता का संदेश
दिया उगता सूरज, सुनहरी रेत
चाँदी-सा गंगा जल, महुआए खेत,
फैलाई सृष्टि, बाँटी संस्कृति अपार।
परंतु माँ कहीं
उसी पंक्ति में छिपकर बैठा था एक दानव
लगता है भूल से पाया उसने एक कण अमृत का,
प्रदूषण का वह दानव, उस कनिका को
गले से उतार कर लगता है
चाहत समेट रहा है, अमर होने की
बाकी है अभी भी माँ तुम्हारी लहरों पर
चमकता सूरज, वही सोने-सी रेत और लहलहाते खेत
अभी भी तुम्हारे जल में है अमृत की बूँदें
जो बाँटी थी तुमने, भारत के उन देवताओं को
करने को समर्थ हैं, मिलकर उस दानव का विनाश
जो गलती से उतार गया था, तुम्हारी कुछ बूँदे
देवों की इस भूमि में छोटे से दानव को
उखाड़ फेंकना, माँ कोई कठिन नहीं है
करनी होगी प्रतिज्ञा, बस माँ
तुम्हारे दिए हुए देवत्व को सम्हाल कर रखने की
तुम्हारी ही विरासत को, तुम्हारे ही अमृत को!

---

* डॉ० किरन शुक्ल, 'पर्यावरण,' दिसम्बर 1994

अन्तिम उपहार

मेरे नितान्त अकेलेपन का साथी है।
वो पेड़,
जिसे तुम लेकर आये थे,
अपनी "मृत्यु"के कुछ दिन पूर्व
और उसे,
लगाया था मैंने तुम्हारी मृत्यु के "तीन दिन"बाद
जानते हो आज उसमें पहली "बौर'आई है।
हवा के पहले झोंके के साथ
तुम्हारे फिर "पल्लवित" होने का नवल संदेश लेकर
बन्द "गवाक्षों"से मैंने उसे महसूस किया,
सहेजा उसे मन, मस्तिष्क एवं
हृदय के अविराम स्पंदनों के बीच।
जहाँ अब सुप्त यादों के सिवा
कुछ भी नहीं।
बहुत बड़ा हो चला है वो पेड़
मेरी पहुँच से बहुत ऊँचा।
तुम न कदमताल कर सके मेरे साथ,
पर अब संतोष इतना
कि निभा पाएगा, मेरी अन्तिम यात्रा
तक का साथ,
तुम्हारा ये "अन्तिम उपहार"।

---

* रिमी मेहरोत्रा, 'पर्यावरण,' दिसम्बर 1993

दो लघु कविताएं

मूक प्रहरी

सुन सको तो सुनो
यह किसी पेड़ के,
कटने का शोर नहीं
जीवन पर काल का प्रहार है।
कट कर गिरते हुए,
मानवता के
एक मूक प्रहरी की
अन्तिम चीत्कार है!

माँ की पीड़ा

उस माँ को पीड़ा होती है,
जिसकी गोद से
स्तन-पान करते शिशु को
खींच कर हटाया जाता है।
वही पीड़ा धरती भी सहती है,
जब जब किसी वृक्ष को
काट कर
गिराया जाता है!

---

* हरीश नारंग, 'पर्यावरण,' दिसम्बर, 1992, मार्च, 1993

पानी

दिन भर वह
पानी बर्बाद करता रहा, करता रहा।
फिर प्यास लगने पर पानी की तलाश में
भटकता रहा, भटकता रहा।
पानी खोजा बहुत खोजा दिन भर वह
पानी खोजता रहा, खोजता रहा।
पर पानी न मिलने पर प्यास से
तड़पता रहा, तड़पता रहा।

---

* सव्य साची पाल, 'पर्यावरण,' दिसम्बर 1992 एवम् मार्च 1993

अमलतास से*

अमलतास
रुष्ट आकाश का क्रुद्ध सेनापति ग्रीष्म
दुदुंभि बजाते
तेज-पुंज रथ में सवार
रणक्षेत्र में उतरता है
अपनी अक्षौहिणी के साथ।
व्याप जाता है हर ओर सहमा सन्नाटा।
और तुम
मुस्कुराते हुए फूल की लटें गूँथ रहे होते हो
अपनी कुटिया में शान्त
थके-हारे पथिक की चादर में
विश्राम के दो अनमोल पल टाँक देने के लिए।
दिशाएँ दहक रही होती
उच्छृंखल किरणों के ताप से
आक्रान्त।
धरती मौन होती
तटस्थ बुद्धिजीवी की तरह
हवा दम साधे

---

* डा० राणा प्रताप सिंह, 'पर्यावरण,' सितम्बर 1992

देखती होती है
बिगड़ैल किरणों की आवारागर्दी
बूढ़े मुनीम की विवश आंखों जैसी
और तुम
गुनगुनाते हुए
फूल की लटें गूँथ रहे होते हो
उन सबको एक साथ
अलग-अलग ढंग से
चुनौती देते हुए
अमतलास!
सम्मुख तुम्हारे
ग्रीष्म रथ के घोड़े चौंधियाकर
घुटने टेक
हांफने लगते हैं
भौंचक्क देखते रह जाते
धरती और हवा
और आकाश। पसीने-पसीने होने लगता पेशानी
पर बल दिये।

जिन्दगी और मुस्कान

मैत्री करो, मैत्री बढ़ाओ,
हरियाली को समझो,
हरियाली अपनाओ,
वातावरण को विषाक्त होने से बचाओ।

ये महज़ पेड़ पौधे,
व झाड़ियाँ ही नहीं हैं,
ये हैं ज़िन्दगी,
ये देते हैं जिन्दगी।

ये पेड़-पौधों का लहलहाना,
है मैत्री-भाव दर्शाना,
क्या समझ पाएगा इन्सां,
या रहेगा प्यार इक-तरफा?

इस हरित ग्रह की शान हैं ये,
जिन्दगी और मुस्कान हैं ये,
बिना इनके धरती है कहलाती
मरुभूमि, परती भूमि, इत्यादि।

गर धरती ये हो गई बांझ,
तो हो जाएगी इन्सानियत की सांझ,
प्यार उठ जाएगा दुनिया से,
जिन्दगी सिसकेगी, मौत मुस्कुराएगी।

---

* राज कटारिया 'अजीज', 'पर्यावरण,' जून 1993

क्यों नहीं गले लगाते पेड़ों को तुम?
क्यों नहीं अपनाते पौधों को तुम?
इनके प्रति सहिष्णुता अपनाओ तुम,
और पेड़ और पौधे लगाओ तुम।

दुलारो इन्हें, सँवारो इन्हें, निखारो इन्हें,
और फिर देखो चमत्कार,
शस्य-श्यामल होगी धरती,
और चारों ओर बढ़ेगी समृद्धि।

परिवर्तन

परिवर्तन है नाम मनोहर, परिवर्तन ही आभा है।
परिवर्तन ही नियम सृष्टि का, परिवर्तन ही जीवन है।
परिवर्तन दिखता दिनेश में, परिवर्तन चन्दा में है
परिवर्तन तारों में होता, परिवर्तन सागर में है।
परिवर्तन ही नौ रस होते, बीजों में है परिवर्तन
परिवर्तन नवनीत दुग्ध का, पौधों में भी परिवर्तन।
धरणी का जीवन परिवर्तन, जल की धारा परिवर्तन
मौसम जग का परिवर्तन, ब्रह्माण्ड सकल में परिवर्तन।
परिवर्तन होता प्रभात में, कुसुमों में है परिवर्तन।
परिवर्तन है नील गगन में, मेघों में भी परिवर्तन।
औषधि से होता परिवर्तन, परिवर्तन शिक्षा-शाला
होता परिवर्तन पत्तों में, परिवर्तन रस का प्याला।
परिवर्तन है भस्म धातु की, जड़ का चेतन परिवर्तन।
परिवर्तन अलकों में दिखता, मानव मन है परिवर्तन।
कोयल परिवर्तन मिठास की, परिवर्तन दिल की धड़कन
परिवर्तन नयनों में होता, परिवर्तन है मधुर मिलन।
सुख का परिवर्तन दुःख होता, दुःख का सुख है परिवर्तन
दीप शिखा भी तिमिर नष्ट कर, जग में लाती परिवर्तन
एक अवस्था ढल जाने पर, दूजी उसका परिवर्तन।
युग का घटता-बढ़ता वैभव, सदा समेटे परिवर्तन।

* रमेश चन्द्र बमराड़ा, 'पर्यावरण,' सितम्बर 1992

अपने पराए

सांपो से क्या डरना,
जब जहरों के बीच है रहना।

चारों तरफ आतंक फैला हुआ है,
दोस्त-दोस्त पर शक करता है,
खून-खून से धोखा करता है,
इस जिन्दगी में ये कैसा अंधेरा है,
दोस्त पराए हैं, दुश्मन पराए हैं,
अपने पराए हैं, गैर पराए हैं।

फिर कौन अपना है?
यह प्रश्न उठता है बार-बार, लगातार।

सच मानो तो ये जिन्दगी ही अकेली है,
जीते हैं अकेले, मरते हैं अकेले।
फिर क्यों चाहते हैं, कोई दोस्त हो,
कोई अपना हो, जब अपने ही पराए हैं।

अगर है कोई अपना यहाँ,
तो प्रकृति अपनी है और हैं उसके उपहार।

जल अपना है, वायु अपनी है, भूमि अपनी है,
वन अपने हैं, वन्यजीव अपने हैं, वृक्ष अपने हैं,
और अपना है प्रकृति का सुन्दर परिधान।

इसी में जन्मे हैं, इसी में पलते हैं,
और इसी में होता है जीवन का अवसान।

---

* कु० प्रीति रावत, पर्यावरण, मार्च-जून 1992

दावानल के विरुद्ध

भोर की पहली किरण का तेज
मन की भ्रान्ति सा
फैला गगन में
क्या उगा है सूर्य नभ में
या बिखेरा तेज ऋषि ने
शून्य में जो लीन
बैठा कन्दरा के बीच
यह नहीं कोई दिवाली के दियों की पंक्ति
दर्द में बहता हुआ है--
एक दावानल
ले चुका बलि--
वृक्ष, पादप, जन्तुओं की।
फैलता ही जा रहा है यह धुएं के साथ
यह धुंआ पर्यावरण की देह से चू कर गिरा
और इससे फैलती दुर्गन्ध
तुमसे माँगती
रक्षा कवच
वह कवच जो--
जंगलों में फैलती दावाग्नि को
शीतल बना दे
भस्म होने की दुःखद व्यथा मिटाकर

* अनिल वशिष्ठ, 'पर्यावरण,' मार्च-जून 1992

पेड़-पौधों को जिला दे
सिसकते मासूम शिशु से
कीट-पौधे और सब जन्तु
बिलखते हैं—
उन्हें अमृत पिला दे।
यदि नहीं तुम दे सके मानव, कवच तो—
श्राप मेरा—
जी नहीं पाओगे सुख से
घुट मरोगे
उसी ज्वाला के धुएँ से
जो दिया तुमने मिटाकर रंग गिरि के
तुम बचा लो इस हिमालय को
दे कवच पर्यावरण का
जो बना पर्याय जीवन का
शुद्ध जल, थल और
नभ का।

वृक्ष की पुकार

रुकती हुई
श्वासों के मध्य
कल सुना था मैंने
कि तुमने कर दी
फिर एक वृक्ष की
"हत्या"।
इस कटु सत्य का
हृदय नहीं कर पाता विश्वास।
"राजन्य! तुम कब बने नर पिशाच"?
अंकित किया एक प्रश्न?
क्यों? केवल क्यों?
इतना बता सकते हो तो बताओ,
क्यों त्यागा उदार जीवन को .?
क्यों किया हत्याओं का वरण?
अनन्त, असीम जगती में क्या
कहीं भी न मिल सका तुम्हें संतोष-धन ?
अपनी आवश्यकताएँ तो बताते।
शून्य-शुष्क प्रदूषित वन-जीवन की
व्यथा देख रोती है प्रकृति,
जो तुमने किया
क्या वही थी हमारी नियति?
शैशवावस्था में तुम्हें,
छाती पर बिठाए,
यह धरती,
तुम्हारे चरण चूमती रही बार-बार,

* श्रीमती सलमा 'जमाल', **'पर्यावरण' जून** 1991

रात्रि में जाग-जाग कर वृक्ष
तुम्हें पंखा झलते रहे बार-बार
तब तुम बने रहे सुकुमार
और अब ?
अपनी असीम तृष्णाओं के लिए
प्रकृति पर करते हो अत्याचार।
हम तो शिला की भाँति थे निर्विकार,
तुम ! स्वार्थी, समाजवादी और "गद्‌दार",
वृद्ध तरुण तरुओं पर कर प्रहार,
आयु से पूर्व उन्हें छोड़ा मँझधार,
रिक्त जीवन दे चल पड़े अज्ञात की ओर,
बनाने नूतन, विच्छिन्न प्रवास।
किस स्वार्थवश किया यह घृणित कार्य,
क्या इतना सहज है किसी को काट डालना?
काश ! तुम कर्मयोगी बनते,
प्रकृति के सँजोए पर्यावरण को बनाते,
प्रमाद में विस्मृत कर अपना इतिहास।
केवल बन कर रह गये उपहास
तुमने सुना होता,
धरती का करुण क्रन्दन
कटे वृक्षों का टूटकर बिखरना,
गिरते तरु की चीत्कार;
पक्षियों की आँखों का सूनापन,
आर्तनाद करता आकाश।
तब संभव था कि तुम फिर
व्याकुल हो उठते उसे पुनः रोपने के लिए।
प्राचीन इतिहास समेटने का करते प्रयास,
तब शायद तुम ! वृक्ष-हत्या न कर पाते अनायास।।

वन दोहावली

वन का पर्यावरण से है अभिन्न संबंध।
इनका रक्षण कर सदा, त्याग वृत्ति निज अंध।।
शोर प्रदूषण हरत वन, वर्षा का भी हेतु।
वन रक्षण सन्मार्ग पर, मत बन राहू-केतु।।
त्यागभूमि वन ऋषिन की, ज्ञान-ध्यान का केन्द्र।
वाल्मीकि ऋषि से यहाँ, मिले कभी राघवेन्द्र।।
विविध जाति की बल्लरी, विविध विटप बहु वृन्द।
वृक्षन लिपटी बल्लरी, रंजित मन निर्द्वन्द्व।।
जीवन आश्रम चार हैं, वानप्रस्थ है एक।
भौतिकता से मुक्त वन, रमते व्यक्ति अनेक।।
वन से सम्पत्ती मिलें, इनके विविध प्रकार।
वन रक्षण का सर्वदा, लक्ष्य बना अनिवार्य।।
वन औषधि भण्डार है, नहिं इन पर दो राय।
चारु चयन कर औषधि, वन अंचल में जाय।।
निम्ब नीलगिरी वृक्ष दोउ, इनका बहुत महत्व।
पवन शुद्धि का निहित है इनमें अद्भुत तत्व।।
निम्ब पत्र-रस हरत है चर्म विकार अनेक।
व्याधिग्रस्त उपयोग कर, समय विचार विवेक।।
त्रिफला गुण सम्पन्न अति, वन की देन महान।
चक्षु उदर पीड़ा हरे, कास श्वास निदान।।
धात्रीफल में कहत हैं, विष्णु करत निज वास।
उपयोगी यह वृक्ष है, मत कर सत्यानाश।।
निज विभूति वर्णन करत, अर्जुन से ब्रजचन्द।
"वृक्षों में अश्वत्थ हूँ, **कहता मैं निर्द्वन्द्व** "।।

---

* **व्यास मिश्र**, 'पर्यावरण' जून 1991

पेड़ कटेंगे तो.........

पेड़ कटेंगे तो मुसीबत आ जाएगी।
पेड़ न रहेंगे तो वर्षा न होगी,
वर्षा न हुई तो खेती न होगी,
खेती न हुई तो अकाल पड़ेगा।
अकाल पड़ेगा तो जानें जाएँगी।।

बिन पेड़ के फल न मिलेंगे,
कई उद्योग-धन्धे न रहेंगे,
ईंधन न रहेगा, काम न रहेंगे,
यह सब न मिला तो आफत आ जाएगी।

पेड़ बिना न चारा मिलेगा,
न वन्यजीव को सहारा मिलेगा,
न शुद्ध हवा न प्रिय नज़ारा मिलेगा,
शुद्ध हवा न मिली तो बीमारी सताएगी,
पेड़ कटेंगे तो मुसीबत आ जाएगी।।

---

* **कृष्ण कुमार** 'सुमन', 'पर्यावरण,' दिसम्बर 1991

दोबारा न होता

अगर पेड़ पौधे न होते धरा पर
तो जीने का आनंद हमारा न होता।
न तो फूल खिलते, न फल मूल मिलते
प्रकृति का सुहाना नजारा न होता।।

न शीलत हवायें, न मिलती दवायें
जीवन हमारा सुरक्षित न होता।
दुल्हन के हाथ पे मेंहदी न रचती
फूलों से सेहरा सँवारा न होता।।

वनों की अगर यों कटाई न होती
तो जीवन मरुस्थल हमारा न होता
हिमालय जो नीचे चला आ रहा है
प्रलय सा ये भीषण नज़ारा न होता।।

ये नदियों की बाढ़ें, ये मौसम बदलना
प्रदूषण का पुरजोर नारा न होता।
ये जो लुप्त होती हुई जातियाँ हैं
बचाने का उद्यम हमारा न होता।।

अगर बाग बगिया उजाड़ी न होती
तो प्लास्टिक से घर को सँवारा न होता।
अगर पेड़ पौधों सभी व्यर्थ होते
तो वृक्षों का शोषण दोबारा न होता।।

---

* भगवती प्रसाद उनियाल, 'पर्यावरण,' मार्च 1991

विषरहित नीति....

पहले पैरों पर गिरता है,
फिर पीठ पर डंक जमाता है।
फिर धीरे-धीरे कानों में,
गुन-गुन गीत सुनाता है।।

फिर निडर बना चुपचाप मगर,
घर में यह घुस आता है।
सारी बातें नीचों कीसी,
मच्छर यह अपनाता है।।

यह मेरी बात नहीं मित्रों!
संस्कृत के कवि का करना यह।
मच्छर की काली करतूतें,
पहले ही जान गया था वह।।

यह वाहक है परजीवी का
जिससे मलेरिया होता है।
जिसका शिकार बनकर मानव,
तन, मन, धन सब खोता है।।

छोटे से इस प्राणी ने,
कितने ही नगर उजाड़े हैं।
कितने दीप बुझाए हैं,
कितने घर-बार बिगाड़े हैं।।

---

* डा० सुरेन्द्र कुमार शर्मा, 'मलेरिया पत्रिका' सितम्बर 1993

इसके विरुद्ध में मानव ने,
जो जो शस्त्र बनाए हैं।
कीटों के नाशक यौगिक सब,
कुछ भी काम न आए हैं।।

जो जो उपाय करता मानव,
मच्छर उन सब पर हँसता है।
एक जगह मिट गया अगर,
तो नयी जगह पर बढ़ता है।।

आओ अब सब जन मिलकर के,
कुछ ऐसी नीति बनाएँ हम।
वातावरण स्वच्छ बने,
मच्छर मार भगाएँ हम।।

पेड़ सफ़ेदे के रोपें,
शोषक-गर्त बनाएँ हम।
पानी जिससे जमा न हो,
गड्ढे सब भरवाएँ हम।।

पानी की सतहों पर ही तो,
मच्छर के वंश पनपते हैं।
अण्डों, डिम्बक, कोशी से,
बनकर सब मच्छर उड़ते हैं।।

जिस जल में मच्छर पनप रहे,
मछली उसमें डलवाएँ हम।
मच्छर के वंश मिटाने की,
विषरहित नीति अपनाएँ हम।।

पर्यावरण चेतना

यह विकास पथ है या विनाश पथ,
जिस पर हम अग्रसर हो रहे।
खोखला कर रहे पर्यावरण को,
और अपनी किस्मत को रो रहे।।

अनियोजित विकास की अंधी दौड़ में
हम सभी हैं दिशाहीन धावक।
इस धावन पथ का अंत कहाँ है?
स्तब्ध खड़ा पूछे प्रश्नवाचक।।

ओज़ोन परत की चादर को हमने,
कई तीरों से घाव दिये।
अब जब मची त्राहि-त्राहि
तो सोच रहे कैसे सियें।।

जहर उगलती चिमनियों को,
प्रतिदिन देखें हम सभी।
पर जब बदल बरसायें तेजाब,
कुछ सोचते हैं सिर्फ तभी।।

क्यों आती है भीषण बाढ़?
क्यों पड़ते हर वर्ष अकाल?
धरती का चीरहरण करके,
दुः शासन पूछे ये सवाल।।

---

* दीपक कोहली, 'विज्ञान गंगा' मार्च 1994

ताप बढ़ रहा है पृथ्वी का,
पिघल रहे हैं हिमशिखर।
भौतिकता की चादर ओढ़े,
हम सो रहे सबसे बेखबर।।

चेत सको तो अभी समय है,
वरना कल पछताओगे।
जब ये धरा ही नहीं रहेगी,
तो क्या तुम बच पाओगे!।।

नदियों की मृत्यु

नदियों की मृत्यु का शोक मना रहा हूँ
प्रकृति के विलुप्त रंगों का विलाप कर रहा हूँ
कहाँ गयी वह बलखाती नादियाँ
किनारों को धोती हुई,
जल प्रपातों में कोलाहल से गिरती हुई,
इन्द्र-धनुष फहराती हुई?
कहाँ गयी वह स्रोतस्विनि
सागर संगम करती हुई,
समुद्र को मथती हुई,
ग्रामांचल को शोभित करती हुई?
अब तो यह रह गयी
एक नहर सी, एक निर्झर सी।
विशाल डैम के गेट से,
रिसती हुई सिसकती हुई,
खिसियाती हुई, शर्माती हुई,
आम आदमी के जीवन सी,
घिसटती हुई, सिमटती हुई।
मिलती है जाकर सागर से,
पराजित शत्रु जैसी,
अवहेलित करती हुई।

* डॉ० कल्याण शंकर भट्टाचार्य 'निर्झर' विज्ञान गंगा,' सितम्बर 1994

सागर के वक्षस्थल में,
अपनी लज्जा ढाँकती हुई।
मैं किनारे पर, किनारे पर खड़ा
पूर्ण यौवना, सुन्दरी गर्विता
उसका बलात्कार-उसका लुंठन
देखता हुआ, मौन खड़े रोता हुआ
अपनी नदियों के मृत्यु का शोक मना रहा हूँ।
प्रकृति के मोहक रंगों का विलाप कर रहा हूँ।
झूठी शान के नग्न चाहतों की
विज्ञान के दुरुपयोग की
मृत्यु कामना कर रहा हूँ,
शोक मना रहा हूँ,
प्रकृति के उजाड़ने की,
मातृत्व के सम्भोग की
यंत्र सभ्यता के खूनी पंजों की,
मृत्यु कामना कर रहा हूँ।
मैं मौन खड़े, असहाय
नदियों की मृत्यु का शोक मना रहा हूँ।
यांत्रिक सम्भोग का नाश हो,
यही कामना कर रहा हूँ।
प्रकृति के विलुप्त रगों का,
अश्रु तर्पण कर रहा हूँ।
प्रदूषित धरा के विलाप का,
भागीदार बन रहा हूँ।।

कम्प्यूटर जी

कलावंत गुणवंत आपके गुण को जानें।

बड़े-बड़े ज्ञानी-विज्ञानी लोहा मानें।

मंत्रवाद पर बुद्धिवाद ने मारा छापा

ज्योतिषियों के दादा हों या गणकों के पापा।

जिसे क्लर्क माहों में कर पाते,

उसी कार्य को आप क्षण भर में निपटाते।

मतपत्रों की गणना में अब कष्ट न होगा,

नेताओं का समय कीमती नष्ट न होगा।

जाति धर्म निरपेक्ष करें, जन-गण-मन- सेवा,

जयघोष करे जो पायें आपकी सेवा।

भविष्य में क्या चमत्कार दिखाओगे,

ग्रह नक्षत्रों की बात बताओगे!

---

* मंयक कुमार गुप्ता, 'विज्ञान गंगा', सितम्बर 1993

विज्ञान की त्वरित प्रगति

वैज्ञानिक भागीरथ
कड़ी तपस्यारत
करते हैं आह्वान
ब्रह्माण्ड ज्ञान।
कहाँ है वह शंकर
जो सम्हाले अपने मस्तक पर
संजीवनी बूटी और अणुबम
से प्लावित आकाश गंगा
और जन्हु
जो नियाग्रा सी धार आत्मसात कर
प्रवाहित करे धरा पर
शिवगंगा।

---

* -विश्व मोहन तिवारी, 'विज्ञान गंगा' अक्टूबर-दिसम्बर 1988

गुलमोहर

बचपन की कुछ यादों में समाया,
था नन्हा सा वह गुलमोहर।
सूर्यातप से कुम्हलाता,
फिर सिंचित हो मुस्काता
तेज हवा के झोंकों से झुक जाता,
और सहारा माँगता।
बरखा की रिमझिम से खुश होता,
और उठ-उठ जाता।
कितना आश्रित और असहाय
था वह गुलमोहर।

बचपन की कुछ यादों में समाया,
था अल्हड़ सा वह गुलमोहर।
धूप में लालायित हो खिलता,
और महकता खट्टे-मिट्टी खुशबू से।
तेज हवा के झोंकों से लहराता
और बरखा की तीखी फुहारों से, हरा-भरा हो जाता।
कितना इठलाता और बिखेरता लाल फूलों को
था वह गुलमोहर।

बचपन की कुछ यादों में समाया,
घना, हरा-भरा वह गुलमोहर।
ग्रीष्म की दोपहर में
करता था, ठण्डी छाँव।
बरखा की तेज झड़ी को
बना देता था झीनी फुहार।
कितने ही जन जीवों का
था, वो रैनबसेरा।

---

* दक्षा गुप्ता, 'पर्यावरण पत्रिका,' सितम्बर 1995

विज्ञानांजलि

कितना सौम्य, कितना महकता
था वह गुलमोहर।
बचपन की यादों में समाया,
था वह वृद्ध गुलमोहर।
कर दिया था खोखला,
असंख्य जीवों ने मिलकर।
तेज हवा झोंकों से
गिरती थीं टहनियाँ कराह कर।
बरखा की ठण्डी फुहार
लगाती थी हरा लेप।
कितना सुचित और अटल खड़ा
था वह गुलमोहर।
बचपन की कुछ यादों में समाया,
था मृतक वह गुलमोहर।
अन्तिम समय में संजोग
था बरखा और आँधी का
देख पड़ा धरती पर
कहते सब, हाय हमारा गुलमोहर।
कुछ ने चीरा, कुछ ने फाड़ा
और किया समर्पित अग्नि को।
फिर कुछ आये और चुन गये
टहनियों और हरी पत्तियों को।
मेरे हिस्से में आये कुछ फूल
महक उठते हैं, अक्सर यादों में।
कितना अदभुत्, कितना सनातन
था वह गुलमोहर!

पर्यावरण गीत

शुद्ध वातावरण,
स्वच्छ पर्यावरण,
हो हमारा- तुम्हारा यही आचरण।
हर कहीं स्वच्छता,
स्वच्छ नर, नीर हो।
शुद्ध हो वायु नभ,
नष्ट हर पीर हो।
शुद्ध अंतःकरण,
हम प्रकृति की शरण,
सृष्टि की कामना,
प्रेम का संचरण।
शुद्ध वातावरण...
हर लता-वृक्ष से,
जीव को प्यार हो।
है प्रकृति नववधू,
नित्य श्रृंगार हो।
हो दुखों का हरण,
नित बढ़े सुख चरण,
आज इससे जुड़ा,
विश्व जीवन-मरण।
शुद्ध वातावरण।

---

* सूर्य कुमार पाण्डेय, 'पर्यावरण पत्रिका,' सितम्बर 1995

आओ करें निदान

विषमय वातावरण हो रहा, बहुत बढ़ा विज्ञान,
धुआँ-धुआँ हो रही दिशायें, आओ करें निदान।
'कालियदह'हो गये जलाशय, फणी रहे फुंकार,
गंगा-यमुना की पावनता करती करुण पुकार।
नहीं आचमन को मन करता, कौन करे फिर स्नान,
आओ करें निदान।
वनदेवी- वनदेव कहाँ? जब वन ही हुए विनष्ट,
हा हा करती धरती माँ का कैसे कम हो कष्ट?
पशु-पक्षी सब विकल हो रहे, भरते आह किसान,
आओ करें निदान।
विष से बोझिल पवन, न उसमें रहा सुरभि का वास,
घुक घुट करके जीव जगत यह आज ले रहा श्वास।
सुमनों के अधरों की भी अब मन्द हुई मुस्कान,
आओ करें निदान।
जल में, स्थल में, नभमंडल में
विष ही विष अब घोर,

---

* भानुदत्त त्रिपाठी 'मधुरेश' 'पर्यावरण पत्रिका,' सितम्बर 1995

विज्ञानांजलि

त्राहि-त्राहि मच रही विश्व में
अब तो चारों ओर।
तान दिया फिर वृत्रासुर ने
अपना विकट वितान,
आओ करें निदान।
भौतिकता की घन की आंधी में मनुज हो रहा अन्ध,
दानवता से उसने अपना जोड़ लिया सम्बन्ध।
मानवता के मूल मिट रहे, खण्डित है पहचान,
आओ करें निदान।
भोग संस्कृति का अब ऐसा फैला भीषण रोग,
नहीं सूझता सुपथ, स्वार्थ में अँधराये हैं लोग।
फिर भी मानव अपने को ही मान रहा महिमान,
आओ करें निदान।
पर्यावरण बने सब सुन्दर, खुलें सुमति के द्वार,
सब हों सुखी, स्वस्थ, सब कोई करे सभी से प्यार।
अखिल विश्व में मानता का आये पुंण्य विहान।
आओ करें निदान।

21वीं सदी में जाने की तैयारी

राह चलते दुर्घटना से
बचने को
शिरस्त्राण पहन
सिर पर।
आँखों पे
धूम-धूलि निरोधक
चश्मा
लगा कर !
तेज़ शोर से पाने
को त्राण
कर्ण-प्लग।
मुख पर
प्रदूषण-रोधी
मुखौटा लगाए।
काँधे पे डाले
ऑक्सीजन का
सिलिण्डर,
हाँ, मैं हूँ अब
तैयार,
21वीं सदी में
जाने के लिए
पूरी तरह तैयार!

---

* प्रवेश सक्सेना, 'पर्यावरण पत्रिका,' सितम्बर 1995

जंगल को जंगल मत समझो

जंगल को जंगल मत समझो,
इनको होना ही मंगल है।
इनका रहना ही जीवन है।।
जंगल यदि कटते जायेंगे,
पृथ्वी भूचाल मचा देगी,
जंगल यदि बसते जायेंगे,
पृथ्वी जीवन सरसा देगी!
जंगल को जंगल मत समझो
इनका होना ही मंगल है।
जंगल के होने से धरती
पर पूर्ण संतुलन रहता है
जंगल के होने से जीवन भी
सुखमय बन जाता है।
जंगल को जंगल मत समझो,
इनका होना ही मंगल है।

---

* **योगेश्वरी शास्त्री**, 'पर्यावरण पत्रिका,' जून 1994

जंगल यदि कटते जायेंगे
उथल पुथल मच जायेगी।
जंगल यदि बसते जायेंगे
सांसों को शुद्ध हवा देंगे

जंगल को जंगल मत समझो
इनका होना ही मंगल है।

वृक्षारोपण जीवन को
फल-फूलों से भर देगा।
दूषित वायु हटा करके
मानव को शुद्ध हवा देगा।

जंगल को जंगल मत समझो
इनका होना ही मंगल है।

वृक्षारोपण जीवन को
हरियाली से भर देगा।
इस हरियाली से जीवन को
खुशहाली से भर देगा।

जंगल को जंगल मत समझो
इनका होना ही मंगल है।

पादप संवाद

वन पादप ने नगर विटप से कहा प्रेम से
'कहो मित्र!क्या हाल है तुम्हारा?'
नगर विटप तब अपनी गाथा लगा सुनाने-
वृक्षारोपण-पर्व जन्मदाता था मेरा
बड़े चाव से मंत्री जी ने था मुझे लगाया
कई दिनों तक फिर मैं प्यासा खड़ा रहा था।
श्यामल मेघों ने आकर कुछ प्यास बुझाई।
बड़ा हुआ नित पशुओं के प्रहार झेले थे।
ज्योंही किया प्रवेश जवानी में प्रिय भाई!
बिजली के तारों से मेरी मुठभेड़ हुई थी।
सरकारी अमले ने आकर मुझे तराशा
फिर कुछ मासों बाद उभरने की सोची थी।
उस अमले ने आकर मुझको पुनः तराशा
वर्षों तक बढ़ने-कटने का दौर चला था!'
वन पादप यह गाथा सुनकर सहम चला था।
पूछा उसने जलवायु का हाल विटप से
मग्न कंठ से विटप सुनाने लगा वेदना—
'गंदा धुआँ सड़क-यानों का मैं पीता हूँ।
शुद्ध हवा बदले में मैं सबको देता हूँ।
दमघोटू जलवायु है इस महानगर की
मित्र ! बताऊँ क्या तुमसे मैं बुरा फँसा हूँ।'

---

* राम किशोर शर्मा, **'पर्यावरण पत्रिका,' अप्रैल** 1995

खिन्न कंठ से नगर विटप फिर लगा पूछने
 'मेरी तो सुन ली, अपनी कुछ कथा सुनाओ?'
वन पादप बोला तब अपने सहज भाव से
'मैं प्रकृति का तनय उसी की गोद पला हूँ
मुक्त भाव से बीता बचपन और जवानी।
मानव के अत्याचारों से दूर रहा हूँ
कभी-कभी तूफानों के प्रहार झेलें हैं
पर उनसे भी सहनशक्ति मैंने पाई है।
हिम, आतप, वर्षा के मैंने वार सहे हैं
 किसी तपस्वी से कम मेरी नहीं साधना।
वन पंछी मेरी डालों पर राग सुनाते
 छाया में तापस-साधक आकर सुस्ताते।
प्रकृति नटी की सुखद शरण में सदा रहा हूँ
 अर्धशती की लंबी आयु मिली है,
चकित हो गया नगर विटप यह गाथा सुनकर
बार-बार उसने अपना जीवन धिक्कारा
'कहाँ फँसा हूँ मैं फूटी किस्मत का मारा'।

वृक्ष कट रहा था

वृक्ष को कटता देख
उसकी शाखाओं पर बैठे पक्षी
आपस में बतियाने लगे
चिल्लाकर शोर मचाने लगे
हमारा आशियाना जाता रहा।
उनके नन्हे-नन्हे बच्चे
डर से काँप रहे थे
और उनके माता-पिता
बच्चों को पंखों से ढाँप रहे थे
सब उदासीन थे।
वृक्ष झेल रहा था
तीखे प्रहारों का सिलसिला
उसके पत्ते, शाखाएँ, तना और जड़
अपने कट जाने के गम से ज्यादा
यह सोचकर मृतप्राय होते जा रहे थे
कि, इन घोंसलों में ठहरे
हमारे पुराने मेहमानों का क्या होगा?
जिन्होंने हमारा साथ
गर्मी, सर्दी, बरसात
आंधी और तूफान में दिया।
वृक्ष स्वयं पर वार झेलते
उन सबकी कुशल-क्षेम की
कामना कर रहा था
और अपने कुछ न कर पाने के दुख में
चुपचाप कट रहा था।

---

* **नरेश कुमार** 'उदास', पर्यावरण पत्रिका, अप्रैल 1995

पर्यावरण चुनाव

समाचार-पत्रों में बड़े गौरव के साथ छप रहा है
पर्यावरण भी अब चुनाव का मुद्दा बन रहा है।
चंद स्वार्थ लोलुपता की आँधी में,
पूर्वजों की निर्विवाद समाधि में,
आज के हिंसकों का साया पड़ रहा है।
पर्यावरण भी अब चुनाव का मुद्दा बन रहा है।
नदियों का कलरव, चिड़ियों की चहकन,
लहलहाती फसलों, फूलों के उपवन की महकन,
विलुप्त होती भंगिमा को प्राप्त कर रहा है।
पर्यावरण भी अब चुनाव का मुद्दा बन रहा है।
मैना की मीठी-मीठी धुन, कोयल के मधुर छंद,
मौसमी बहारें, बसंत की बौरों से रिसता मकरंद,
विरह, व्याकुलता में डूबने का आगाज़ कर रहा है।
पर्यावरण भी अब चुनाव का मुद्दा बन रहा है।।
पंजाब-कश्मीर, मिजोरम, झारखण्ड,
पृथक बुन्देल, बघेल और उत्तराखण्ड,
सब अंजामों से वाकिफ़ फिर भी क्या जंग छिड़ रहा है।
पर्यावरण भी अब चुनाव का मुद्दा बन रहा है।

---

* **इन्द्र प्रसाद त्रिपाठी, 'पर्यावरण पत्रिका,' अप्रैल 1995**

हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई,
अल्पसंख्यकों, बहुसंख्यकों की दे के दुहाई,
इस रत्नजड़ित धरती पर वज्रप्रहार कर रहा है।
पर्यावरण भी अब चुनाव का मुद्दा बन रहा है।
इसके रखवालों के ढंग अजब,
करते वे हरदम अजब गजब,
अब प्रकृति के आंचल से भी मजाक चल रहा है।
पर्यावरण भी अब चुनाव का मुद्दा बन रहा है।।
मेरे प्यारे देशवासियों अपन आँखें खोलो,
पश्चिम की छोड़, अपने पूर्वजों का रुख ले लो,
क्योंकि यह चुनाव किसी को भी नहीं बख्श रहा है।
पर्यावरण भी अब चुनाव का मुद्दा बन रहा है।।

न्यूटन के गति के नियम

पहला नियम

सदा स्थिर रह
चला तो चलता जाए
जब तक बल अन्य लगे नहीं
स्वयं न बदला जाए।

दूसरा नियम

संवेग की परिवर्तन दर
और दिशा अनुपात
बाह्य बल के सम होता
दूसरा यही सिद्धांत।

तीसरा नियम

क्रिया सम प्रतिक्रिया होवे
बाकी दिया विपरीत
गति नियग यह तीसरा
सदा सत्य है मीत।

आर्कमिडीज़ का सिद्धांत

यदि ठोस द्रव में डूबे
घटता भार लखावे
द्रव तौल तुल्य कमी के
जाते ठोस हटावे।

---

* डॉ० अश्विनी कुमार सिन्हा, 'विज्ञान गरिमा सिन्धु' संयुक्तांक, 17 वर्ष 1995

सोचिए

हमें तो,
फिर भी,
वसीयत में,
जंगल मिले हैं,
पशु-पक्षी मिले हैं,
नदियाँ मिली हैं,
समुन्दर मिले हैं,
और हम, दंभी
नालायक, जुआरी
बेटों की तरह,
उसे ही,
एन केन प्रकारेण
नष्ट करने पर तुले हैं।
हम पर हमारी भावी पीढ़ी का,
कर्ज भी तो है,
सोचिए
वसीयत में,
हम उसे क्या देने
जा रहे हैं?
हमारे शकुनि हाथ तो,
आज ही सब कुछ
दाँव पर,
लगा रहे हैं।

* **आनंद बिल्थरे,** 'पर्यावरण पत्रिका,' जून 1994

बाल विज्ञान

जन्म-दिवस

अपना अगला जन्म-दिवस मैं
कुछ इस तरह मनाऊँगा।
घर के आंगन के कोने में
कोई पेड़ लगाऊँगा।

घर में जो बाई आती है
उसके घर जाऊँगा मैं।
खूब मिठाई उसके बच्चों
को देकर आऊँगा मैं।

रंगों का डिब्बा भी दूँगा
कापी, पेंसिल, पेन, किताब।
मेरे अगले जन्म-दिवस की
ऐसी है योजना, जनाब।

शीशा

मम्मी, मैं शीशे के अन्दर
कैसे पहुँचा? समझा दो ना।
और वहाँ तक जाने का
है कहाँ, रास्ता, दिखला दो ना।
बेटे, शीशा हमें हमारी
ही सूरत दिखला देता है।
जब प्रकाश इस पर पड़ता है
उसको यह लौटा देता है।
लौटा हुआ प्रकाश हमारी
आँखों से जब टकराता है
तब जाकर शीशे के अन्दर
हमको बिम्ब नजर आता है।

* डॉ० दिनेश दधीच,'हरियाणा साइंस बुलेटिन', सितम्बर 1993

क्या है ऊर्जा?

भोजन, फल, सब्जी खा बच्चो
काम सदा तुम डटकर करते,
इसी तरह ट्रक, कार, ट्रैक्टर
पेट्रोल, डीजल से चलते।

भोजन व पेट्रोल सभी से
शक्ति काम करने की आती,
क्षमता यही काम करने की
'ऊर्जा'नाम से जानी जाती।

यह ऊर्जा कितने प्रकार की
आओ उनके नाम गिनाऊं,
कैसे कितनी है उपयोगी
लो, बच्चों तुमको समझाऊँ।

थ्रेशर से कम समय में गेहूँ
भूसे से है अलग हो जाता,
कोल्हू से गन्ने का रस भी
आसानी से बाहर आता।

खेत जोतता शीघ्र ट्रैक्टर
यंत्रों से झट काम हो कितना,
हाँ यह 'यांत्रिक ऊर्जा'होती
बच्चों, नाम फटाफट गिनना।

---

* घमण्डी लाल अग्रवाल, 'हरियाणा साइंस बुलेटिन', अप्रैल 1992

कागज के पेड़

यांत्रिक के लेखाँकन
दैज्ञानिक के लेख
डॉक्टर की पर्ची
नेताओं के भाषण
और अखबारी प्रलेख।
जिन कागजों पर लिखे जाते
इतने सारे संदेश
बनते हैं पेड़ से
जो न देते शुद्ध पवन केवल
देते हैं हरियाली
जंगल और खेत।

अतः हे मानव!
तुमसे है निदेवन
चाहे हो तुम मंत्री
या हो न्यायाधीश
चाहे हो वैज्ञानिक
या हो जिलाधीश
चाहे हो अध्यापक
या हो पीठाधीश
जब भी कागज का
करो तुम प्रयोग

---

* डॉ० हेमचन्द्र जोशी, 'पर्यावरण संरक्षण,' अप्रैल 1996

कागज के जनकों को
अवश्य नवाओ शीश।

कागज के साथ
बरतें सदा सावधानी
चाहे हो झंडे
या हो निशानी
चाहे हो न्याय
या हो रवानी
चाहे हो रिपोर्ट
नई या पुरानी

चाहे हो कविता
या हो कहानी
कागज के साथ
करें ना मनमानी
कागज के पीछे है
पेड़ों का क्रंदन
पेड़ जो सजाए
कानन नंदन।

आरोपित कर दो वृक्ष

आरोपित कर दो वृक्ष,
कि धरा-धरा बन जाये।
नग्न खड़े पर्वत शर्माते,
अपने में सिकुड़े सकुचाते।
सकुचाहट में पग फिसला तो,
बड़े-बड़े भू-स्खलन बनाते।
रोको ! इस विघटन को,
जन असहाय न हो जाये
आरोपित कर दो वृक्ष
किधरा स्वयं रुक जाये।।
विगलित तन को देख,
धरा का हृदय द्रवित है ।
गगन भरे घन घोर घटा से,
पीड़ा की ही धार स्रवित है।
रोको ! अश्रुवेग को,
जीवन बह ना जाये ,
आरोपित कर दो वृक्ष,
कि धरा स्वयं थम जाये।।
खुला शीश आँचल छितराया,
सूखा तन-मन भी पछताया
रिसते घाव कहानी कहते,
इस बहाव में सब हैं बहते।
रोको ! बाढ़ नदी
अपने में लेती आए
आरोपित कर दो वृक्ष,
कि धरा सँभलती जाये।।
माँ का करो शृँगार,
बहिन की रक्षा कर लो
नारी को आश्वासन दो,
भुजबल-संबल दो।
हरित-वृक्ष से,
आच्छादित सौंदर्य बनाये
आरोपित कर दो वृक्ष,
कि धरा सँवरती जाये।।
वृक्ष सदा देता है,
लेता कभी नहीं है,
काट जलाते हम,
पर भरता पेट वही है।
ऐसे फलित वृक्ष से,
धरा भरी रह जाये
आरोपित कर दो वृक्ष,
धरा वसुधा कहलाये।।

---

* **(श्रीमती) विद्या अवस्थी, पंखडियाँ से साभार**

नीम गाछ

आरी के दाँतों-सी
कटावदार
पत्तियों के
सब्ज़ गुच्छों को
चँवर-सा डुलाता
नीम गाछ।
पत्तों के फिल्टर में
दूषित हवा को छानकर
चहुँ ओर
शुद्ध आक्सीजन का
स्प्रे कर रहा है।
पकी निबोलियों को
धरती पर चुआकर
निपुण वैद्य-सा
मुफ्त में
ओषधि-वितरण कर रहा है।
हवा के साथ-साथ
मस्ती से झूमता
हरित सरोवर-सा
गगन के विशाल केनवस पर
हरी लहरों का
रंग भर रहा है।
बीमार दुनिया
स्वास्थ्य बुलेटिन-सा
स्वास्थ्य समाचार प्रसारित करता
सूचना पट्ट-सा फहरा रहा है।
विज्ञापनवादी युग में
छालधारी तापस-सा
चुपचाप
जनसेवा कर रहा है।
ज़रा देखो तो
रोगाणु भरी
दुःखों की मिट्टी में खड़ा
अनासक्त नीम गाछ
सबसे हलो करता
कैसा मुस्करा रहा है।

---

* डॉ० श्रीमती मंजू गुप्ता, 'विज्ञान' दिसम्बर 1990

प्रकृति और मानव

धरती तू सज-धज कर अपने
किस प्रिय को चली रिझाने को?
वृक्षों के कोपल की लाली
निज होठों पर भरपूर भरे
मतवाली पवनों से हिल-मिल
ये पेड़ झूमते हरे-भरे।
नभ की लाली से माँग सजा
अनुराग प्रिया का पाने को।
मन के उद्‌गार मचलते हैं
नदियों की चपल तरंगों से
परिधान चमकते दिखते हैं
झिलमिल तारों के बिम्बों से।
सरितायें कल-कल करतीं ज्यों,
सागर में चली समाने को।
हिमगिरि के उत्तुंग शिखर
चल रहे चूमने गगन नील
तपते, पछताते, अश्रु बहाते,
पिघल-पिघल बन रहे झील।
नद-निर्झर-सागर-सरितायें,
अमृत जल से सरसाने को।
लो धरा-गगन का सेतु बना,
सतरंगी इन्द्रधनुष चमका।
छम-छम बूँदों की स्वर लहरी
मन उपवन हरषाया महका।
यूँ प्रकृति नटी नव रूप धरे,
जय दुंदुभि चली बजाने को।
झूमती प्रकृति, पर कुटिल मनुज
कृत्रिम वैभव को जकड़ रहे।
धरती को मनमाना चूसें,
इस एक नीति को पकड़ रहे।
नित चूनर धानी फाड़ रहे,
'उन्नत कर रहे जमाने को।'
घन घुमड़-घुमड़ कर बोल रहे,
मत धरती पर यूँ जहर घोल।
मोती बदलो मत कौड़ी से,
अपना भविष्य लो जरा तौल।
क्यूँ अंतरिक्ष तक झपट रहे,
ज्यादा से ज्यादा पाने को।

---

* **ओम प्रकाश गुप्ता, 'विज्ञान' अगस्त 1992**

सिगरेट

पीजिये
महानुभाव!
कार्बन मोनोऑक्साइड,
बेंजोपायरिन,
हाइड्रोजन साइनाइड,
कार्बोलिक एसिड जैसी
खतरनाक गैसों में लिपटी;
जहरीली निकोटिन और
टारकोल के मिश्रण से तैयार;
लकवा, दमा,
फेफड़े और मुँह के कैंसर
के शानदार उपहारों से
आपको शोभित करती;
आस-पास और
घर के माहौल को विषाक्त बनाती
क्षणिक आनन्द की
विषैली आदत के रूप में;
आपकी परम् पूज्या(?);
अपनी मात्र एक संख्या से
तमाम जन्मों के बाद मिले
ब्रह्मा की उत्कृष्ट
और सर्वोत्तम रचना के
पाँच मिनट खा जाने वाली;
सफेद-रंगीन कागज में छिपी
बदबूदार, तुच्छ-सी सिगरेट।

---

* अनिल श्रीवास्तव, 'विज्ञान' मई-जून 1992

प्रगति टकरा रही प्रकृति से*

प्रगति टकरा रही प्रकृति से,
ये उन्नति का है नया दौर।
राग-रंग का गया जमाना,
हथियारों की लग रही दौड़।
हथियारों की होड़ में,
भूल रहे हम प्रकृति को।
जो स्वयं ही ले आएगी,
उन्नति के मोड़ को।।
बढ़ता हुआ ये फैशन,
कर देगा हमें बरबाद।
आधुनिकता का ये जंक्शन,
छोड़ेगा ऐसी छाप।।
बच्चा-बच्चा बोलेगा,
एक ऐसी भाषा।
जो मुंह से बरषाएगा,
आग का ऐसा लावा।।
उस आग के लावे से,
निकलेगी ऐसी चिनगारी।
जो इस प्रकृति को देगी,
मानव की ऐसी तबाही।।
तबाही भी होगी ऐसी,
जो कभी नहीं सुधरेगी।
चारों ओर चीख-चीख,
चीख ही सुनाई देगी।।
वो चीख-पुकार भी,
एक दिन दब जाएगी।
प्रकृति हमारी प्रगति से,
चूर-चूर हो जाएगी।
प्रगति करें हम अपनी,
प्रगति करें समाज की।
प्रगति करें प्रकृति की,
प्रदूषण से बचाने की।।
ऐसी उन्नति और विकास
बनेगा प्रकृति का दोस्त।
प्रकृति प्रगति का होगा मेल,
प्रगति देगी प्रकृति सहयोग।।

*** संतोष लता, 'पर्यावरण,' सितम्बर, 1992**

विडंबना*

(1)

वह मर गयी
कैंसर से
असमय
उसे स्तन-कैंसर था
जबकि वह
अक्षत यौवना थी।
किसी भी तरह के व्यसन से दूर
सात्विक भोजन
दिव्य विचार
जीवन भर
धर्म कर्म
और
परोपकार में लिप्त
क्या यही उसका दोष था?

(2)

वह जीवन और मृत्यु के सेतु पर
असहाय पड़ा है आशा से दूर
मजबूर
उसे "सिरोसिस ऑफ लीवर" है
कटु सत्य तो यह है कि
उसने आज तक
शराब की एक बूँद भी नहीं चखी
डाक्टर कहते हैं
सिरोसिस कभी-कभी
बिना शराब के हो सकती है
तो फिर पीने की मनाही क्यों?

---

* डा० प्रभाकर शुक्ल, 'आपका स्वास्थ्य' दिसम्बर, 1990

मेरी याद मेरे बाद

वह दिन आएगा जब मेरा शरीर
किसी अस्पताल में
एक श्वेत चादर में
होगा लिपटा पड़ा,
जिसमें,
जीने और मरने वाले
होंगे पटे पड़े।
तब
वह
क्षण भी आएगा
जब
कि डॉक्टर कह देगा
कि मेरे दिमाग की शक्ति
हो गयी है नष्ट, और,
मेरा जीवन भी
हो गया समाप्त।
जब ऐसा हो
तब मेरे शरीर में
किसी मशीन से
कृत्रिम जीवन मत भरना
और उस शैय्या को
मेरी मृत्यु-शैय्या मत कहना।
कहो कि मेरी
यह है जीवन-शैय्या
और इस शरीर से
निकाल कर मेरे अंगों को
दे देना त्रस्त मनुज को,
कि वे सब भी जीएँ
अपना एक पूर्ण जीवन।
उसे देना मेरे नेत्र
कि जिसने
कभी न देखा हो सूर्योदय,
अथवा किसी आनंदित शिशु का
मुख,
अथवा
किसी नवोढ़ा के नयनों में
छलकता प्रेममय संसार।
उसे देना मेरा हृदय
कि जिसका अपना ही दिल
उसके सीने में नित
तीव्र-वेदना भरता हो।
उस युवक को

---

* प्रो० रमेश चन्द्र सुकुल 'चन्द्र', 'विज्ञान गंगा,' दिसम्बर 1994

दे देना मेरा रक्त,
जो किसी दुर्घटना में
बहा बैठा हो
सब कुछ अपना ही
कि जिससे हो वह दीर्घायु
कि देखे खेलते अपने ही
सब प्यारे नाती-पोतों को।
मेरे गुर्दे दे देना
उस असहाय काया को,
जो हर हफ्ते निर्भर हो
मशीनी डायलिसिस पर।
इस शरीर की अस्थियाँ,
प्रत्येक मांसल पेशी
हर रग व नस द्वारा
जुटकर क्यों न किसी
पंगु बालक को
गतिशील बनाओ।
लो!मेरे मस्तिष्क का
कोना- कोना छान कर
उसकी कोशिकाओं को उगाओ
कि जिससे
खुशी से चीख उठे
कोई मूक बालक ही,
अथवा
सुने अपनी खिड़की पर
वर्षा की थाप
कोई बधिर प्यारी बालिका भी।
जला दो मेरा
जो कुछ शेष रहे, और,
बिखेर दो पवन में
मेरी राख को भी
कि जिसकी बनकर खाद
धरती पर नये फूल खिलें।
यदि
तुम्हें कुछ जलाना ही है,
तो वह हों
मेरे दुर्गुण, मेरे अभाव
और हों
मेरे मित्रों के प्रति
इस मलिन मन की
सकल दुर्भावनाएँ।
यदि
मेरी याद मेरे बाद
तुम करना ही चाहो तो
करना उपकार उसका,
जो तुम पर निर्भर हो।
यदि
तुम पूर्ण कर सको
मेरी इन अनकही इच्छाओं को,
तो मैं जियूँगा,
यहीं
सदा और सर्वदा।।

इक्कीसवीं सदी की ओर

घड़ी के घूमते
तेज काँटों के साथ
21वीं सदी की ओर
बढ़े जा रहे हैं हम,
पर कंधों के सहारे।
यात्रा ऊपर की ओर
यात्रा कथित प्रगति की
कंधों के सहारे।
भाषा के, जाति के
धर्म के, प्रदेश के या
चंद सिक्कों से,
खरीदे गए कंधों पर
बढ़े जा रहे हैं हम,
21वीं सदी की ओर।
नित और तेजी से
बदलते आयाम
एटम
माइक्रोप्रोसेसर, कंप्यूटर
21वीं सदी के, ढेरों सुन्दर कल्पनाचित्र
पर है कोई ऐसा रोबोट, ऐसा कम्प्यूटर
जो पहचान ले,
उसे, हों जिसके
सिर्फ अपने कंधे
मेहनतकश कंधे,
और उसे पहुँचा दे,
21वीं सदी की
एकसाफ सुथरी,
सलोनी दुनिया बसाने के लिए।

---

* विवेक रंजन श्रीवास्तव, 'विज्ञान गंगा,' अक्टूबर दिसम्बर 1988

माँ

माँ!
तुम
कितनी महान हो।
तेरी गोद में,
हम खेले, पले,
और पाया उल्लास।
अनन्त पीड़ाओं को
भोगकर भी,
दिया तूने मधुमास।
फिर भी,
क्यों भूल चुका है
आज का मानव,
तेरा वह कर्ज
छलनी-छलनी
कर रहा है वह,
तेरे इस हरित आँचल को
और हत्या कर रहा है
तेरे अबोध लहलहाते बेटों की।
वृक्ष तेरे अपने हैं मां,
हम हैं पराई सन्तान।
मगर माँ !
अपने बेटों की निर्मम हत्या देख,
तुझे आँसू नहीं आते?
यही सोचकर मैं रोता हूँ
और नमन करता हूँ तुझे,
हे युगजननी!....
तूने आदि से अन्त तक
हमें पाला है
और दिया है अन्नकण।।
हे माँ!
तू अब मत रो।
मेरी माँ ने तुझे,
इसलिये अर्पित किया है कि
कुछ लिख सकूँ तेरी अन्तर्वेदना।
रक्षा कर सकूँ तेरे बेटों की
और बन जाऊँ तेरी आवाज,
युगों-युगों तक।

---

* रमेश चांगेसिया, 'मुसाफिर' 'पर्यावरण पत्रिका,' सितम्बर 1995

प्रगति और प्रकृति

सुरम्य था
वन सुनील और सघन,
मंद-मंद चल रही थी
सुवासित पवन,
मध्य उसके था खड़ा
एक मानव,
लाद पीठ पर
आचार संहिता का बोझ
सार था जिसका
'जियो और जीने दो
प्रगति करो, विकास करो'
खोज रहा था वह
बौखलाया सा
पथ विकास का।
बढ़ने लगा पथ पर
अनचीन्हा सा।
इसी आपाधापी में
एक-एक कर गिरने लगीं
आचार संहिता की परचियाँ,
जीव लुप्त होने लगा
पेड़ गिरने लगे,
उठने लगीं अट्टालिकायें
उठने लगीं चिमनियाँ,
आग दहकती भटिट्याँ
सूर्य सी लगने लगीं।
पर हाय चिमनियों से
उठते धुएं ने
विषैले बादल का रूप धरा,
खो गई सुवास
झुक गई कमर
असमय ही मानव को
बुढ़ापे ने आ धरा।
अब स्वरचित वन में खड़ा
फिर खोजने लगा मार्ग,
इस चक्रव्यूह से निकलने का,
याद आयी वह
आचार संहिता,
पूजा था उसने
प्रकृति के हर एक
घटक को,
गाया था महामंत्र

शं नों अज एकपाद देवो अस्तु शं नोऽर्हिर्बुधन्यशं समुद्रः।
शं नों अपां नपात् पेरुरस्तु शं नः पृर्हिनंर्भवतु देवगोपा।

---

* अंजलि श्रीवास्तव, 'पर्यावरण पत्रिका,' अप्रैल 1995

शब्दों की सेल

मैं शब्द बेचता हूँ
जी हाँ, हल्के-फुल्के भारी भरकम
तरह-तरह के शब्द,
परख लीजिए बहुत सरल है
मेरी अपनी क्यारी की उपज हैं।
आइए प्रोफेसर जी, आइए प्रवक्ता जी!
अध्यापक जी, मास्टर जी!
शब्द ये बहुत मृदुल हैं
केवल कुछ ही पृथुल हैं,
अगर चाहिए कुछ खटमिट्ठे
तो उस ढेरी से ले लें
और अंतस्थल में तोलें।
बरतेंगे तो खूब चलेंगे
बच्चे भी बहुत पसंद करेंगे,
थोड़े तो ले लें
रिबेट में टी ए दूँगा
डी ए दूँगा
शब्द अगर परवान चढ़ गए
धन्य भाग मैं हो लूँगा।
वयोवृद्ध प्रोफेसर हौले से बोले-
अपनी तो भइया कट गई
थोड़ी सी बाकी रह गई
वह भी कट जाएगी
दबी-ढकी सब निभ जाएगी,
युवा प्रवक्ता सामने आए
और तमक कर एकदम गुर्राए
ये कैसी नादानी
भरी जवानी
मुझसे नहीं होगा
"ऊस्पोर" के लिए निषिक्तांड
और "ऐन्थीरीडियम" के लिए पुंधानी,
जुबान लड़खड़ाती है
सूट और टाई से
कतई मेल नहीं खाती है।
मेहरबानों! कुछ तो ले लो
स्वाभिमान के लिए
संस्कृत के मान के लिए
अपनी ही धरती
अपनी बगिया और माटी के शब्द हैं
अपने और केवल अपने हैं
और हम अपनों के लिए प्रतिबद्ध हैं।

---

* एस० एस० जैमिनि, विज्ञान गरिमा सिन्धु जनवरी-मार्च 1989

प्रदूषण का जहर

घुलता जा रहा है
रफ्ता-रफ्ता......जन-जीवन में
वातावरण में
प्रदूषण की समस्या
गंभीर होती जा रही है नित्य।
वायु प्रदूषण.......
ध्वनि प्रदूषण....
जल प्रदूषण......
भूमि प्रदूषण........
गोया प्रदूषण की सुरसा
मानव ही नहीं
प्राणियों, पेड़-पौधों,
सभी को निगलने के लिए
मुँह फैलाये जा रही है।
विवश है मानव
विवश है वृक्ष
विवश हैं पशु-पक्षी !
तरसने लगा है मानव
शुद्ध जल, स्वच्छ वायु
और शांत वातावरण के लिए।
अगर रफ्तार यही रही तो क्या होगा
सोचिए—

इस सुंदर सृष्टि का ?
मानव, पशु-पक्षी औ'
मूक, निर्दोष वृक्षों का ??
जीवन के सुनहले सपनों
और नौनिहालों के भविष्य का
आने वाली अगली कई पीढ़ियों का??
प्रदूषण रूपी सुरसा का
संहार जरूरी है
प्रदूषण नियंत्रण आवश्यक है—
मानव, पशु-पक्षियों,
पौधों के अस्तित्व के लिए
रोकना होगा, ओ मित्र !
पर्यावरण में
प्रदूषण के घुलते जहर को।
निहित है इसमें ही
संपूर्ण विश्व का कल्याण
मानवता की समृद्धि और विकास।
आइए, संकल्प लें—
पर्यावरण को प्रदूषणमुक्त रखने का
जीवनदायी वातावरण को
सदैव स्वच्छ रखने का
उज्ज्वल भविष्य के निर्माण का!

---

* डॉ० सीताराम सिंह पंकज, 'विज्ञान गरिमा सिंधु' अंक 16, 1994

एक स्वर आशावादी

सर्पदंशी मुख,
सागर की लहरों पर
सीपी की तलाश
घना अँधेरा,
दूर तक.....फैला हुआ
टिक टिक करती ध्वनि
समय को
तोड़ने का प्रयास
उजाले की नीरसता
क्यों चुभती है?
हिमाच्छादित चोटियों पर
आज बर्फ नहीं!
क्या कहा—
तुम ले गये रेगिस्तानों में
नहीं मित्र, नहीं
उस बर्फ से
तरु,
जिंदा नहीं होंगे
अलबत्ता,
तुम मार दोगे,
मेरे पर्वतों को
तुम्हें,
अभी आवश्यकता,
उन आंखों की,
देखेंगी जो—
धूप को तरसती,
अविकसित कोंपलें,
तुम्हारे हाथों ने
बंद करा, जिन्हें
अस्त्रों के
भयानक खोल में
वहाँ उनका जंगल,
स्वयं में
बन रहा,
दावानल, ज्वालामुखी
नहीं मित्र, नहीं
उन्हें आज़ाद कर दो!
वे बनेंगी-
फूलों भरी,
अनाज की बालियाँ
मेरा दावा है—
तब तुम,
नहीं छीनोगे
मुझसे, मेरे पर्वत
मेरा दावा है-
तब तुम्हें,नहीं होगा, कोई गिला
रेगिस्तानों से
मेरा हवा है-
तब तुम,
कह सकोगे,
पृथ्वी की आयु
सूर्य से, अधिक है!
हाँ मित्र, हाँ
बर्फ के स्थानांतरण से नहीं,
अस्त्रों के निर्मूलन से
शुरू होगा—
नया सवेरा!

---

* **लोकेश विश्वभारती, 'वैज्ञानिक'** अप्रैल-जून 1988